ISSN 0974-5866
UGC Approved Journal No. 40744

International Journal of Indology

प्राच्यविद्यानुसन्धानम्

PRACHYAVIDYANUSANDHANAM

A REFEREED RESEARCH JOURNAL

Vol . 13 Jan.-June 2018 No.1
वर्षम् 13 जनवरी-जून -2018 प्रथमः अङ्कः

डॉ॰ वेदपालः
सम्पादकः

ISSN 0974-5866
UGC Approved Journal No. 40744

International Journal of Indology

प्राच्यविद्यानुसन्धानम्

PRACHYAVIDYANUSANDHANAM

Half-Yearly Research Journal

सम्पादकः

डॉ॰ वेदपालः

(सेवानिवृत्त) रीडर, संस्कृत-विभागः
जनता वैदिक कॉलेज, बड़ौत (बागपत)
चलभाषः 9837377938
E-mail: prachyavidya@gmail.com
website : www.prachyavidya.org

सम्पादक मण्डलः

प्रो. वीरेन्द्र अलंकार
पंजाब विश्वविद्यालय,
चण्डीगढ़

प्रो. राजेन्द्र विद्यालङ्कार
विशेष कार्याधिकारी
(राज्यपाल, हिमाचल प्रदेश)
राजभवन, शिमला

प्रो. विनय विद्यालंकार
रा.स्ना.म.वि;
हल्द्वानी (नैनीताल)

Vol . 13 | Jan-June. 2018 | No.1
वर्षम् 13 | जनवरी-जून-2018 | प्रथमः अङ्कः

अनुक्रमः

	वेदविद्यास्वरूपम्	महर्षि दयानन्द सरस्वती	4-5
1.	वेदों के सत्यार्थप्रकाश में ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका का अवदान	डॉ० रामचन्द्र	6-11
2.	मनुस्मृति एवं वेदान्तानुसार सृष्टि उत्पत्ति क्रम	डॉ० अमिता रेढ़ू	12-15
3.	''स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में श्रीमद्भगवद् गीता	डॉ० सुदेव	16-24
4.	श्रीमद्भगवद् गीता में प्रयुक्त 'आत्मा' शब्द-विमर्श	डॉ० (श्रीमती) लक्ष्मी मोर	25-27
5.	''श्री मद्भगवद्गीता में वर्णित योग का आधुनिक युग में महत्त्व''	श्रीमती डॉ० रंजु पटियाल	28-31
6.	ललित विस्तर में रस-विमर्श	डॉ. रूबी कुमारी	32-40
7.	जैनदर्शन में जीव का स्वरूप : एक विश्लेषण	प्रो० (डॉ०) विश्वनाथ चौधरी	41-47
8.	चतुर्व्यूहवाद एवं चार आर्यसत्य : वैदिक साहित्य की	डॉ० विश्वजीत कुमार	48-54
9.	कर्णार्जुनीयोक्त उदात्तता की वर्तमान प्रासंगिकता	डॉ० राम संयोग राय	55-58
10.	संस्कृत साहित्य में पर्यावरण चेतना के विविध आयाम	डॉ० श्रीलेखा चौबे	59-67
11.	भारतीय संस्कृति में ''काम'' की मीमांसा	डॉ० इन्दु शर्मा	68-72
12.	वेदों में कर्म सिद्धान्त	डॉ० नन्दिता सिंघवी	73-80

श्रीमद्भगवद् गीता में प्रयुक्त 'आत्मा' शब्द-विमर्श

डॉ० (श्रीमती) लक्ष्मी मोर,
विभागाध्यक्षा, संस्कृत-विभाग,
आर.के.एस.डी. (पी.जी.) कॉलेज, कैथल

भारतीय मनीषियों के उर्वर मस्तिष्क से जिस कर्म, ज्ञान और भक्तिमय त्रिपथगा का प्रवाह उद्भूत हुआ, उसने मानवों के आध्यात्मिक कल्मष को धोकर उन्हें, पवित्र, नित्य शुद्ध, बुद्ध और सदा स्वच्छ बनाकर मानवता के विकास में योगदान दिया है। इसी पतितपावनी धारा को लोग दर्शन के नाम से पुकारते हैं। 'दर्शन' शब्द का अर्थ केवल चर्म-चक्षुओं द्वारा देखना नहीं बल्कि अन्त-चक्षुओं द्वारा देखना या मनन करके सोपपत्तिय निष्कर्ष निकालना ही दर्शन शब्द का अभिधेय है। श्रीमद्भगवद्गीता एक ऐसा सार्वभौमिक ग्रन्थ है जिसमें आध्यात्मिक दर्शन के माध्यम से भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव-जीवन के अनेकानेक बिन्दुओं को छूआ है। श्रीमद्भगवद्गीता में आत्मविद्या के गूढ़ तत्त्वों का स्पष्टीकरण और उन्हीं तत्त्वों के आधार पर मनुष्यमात्र के पुरुषार्थ अर्थात् पूर्णावस्था की पहचान तथा भक्ति और ज्ञान का मेल दृष्टिगोचर हाता है। इसमें आत्मज्ञान के गूढ़ सिद्धान्त विद्यमान हैं। यह समस्त उपनिषदों का सार है और उपनिषदों के सभी सिद्धान्त ब्रह्म तथा आत्मा पर आधारित हैं।

'आत्मा' शब्द 'अन्' श्वास लेना, धातु से बना है। यह जीवन का श्वास है। ऋग्वेद में इसका यही अर्थ लिया जाता था। धीरे-धीरे इसके अर्थ का विस्तार होता गया और इससे जीवन, आत्मा, आत्म या व्यक्ति की मूलसत्ता का बोध होने लगा। शंकर 'आत्मा' शब्द को उस धातु से बना मानते हैं जिसका अर्थ प्राप्त करना, खाना या उपभोग करना या सबमें व्याप्त होना होता है। आत्मा मनुष्य के जीवन का तत्त्व है, यह वह आत्मा है जो उसकी सत्ता में, प्राण में, प्रज्ञा में व्याप्त है और उनसे परे है। जब प्रत्येक वस्तु, जो आत्म नहीं है, नष्ट हो जाती है, आत्मा तब ही रहता है। गीता ग्रन्थ में भी जब अर्जुन युद्धभूमि में उचित-अनुचित के विषय में निर्णय लेने में असमर्थ हो जाते हैं तब भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को 'आत्मा' के बारे में बताते हुए कहते हैं कि केवल शरीर नाश्वान् है इसके अन्दर रहने वाला 'आत्मा' अमर है। ''नैनं छिन्दति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारूत''॥[3] तात्पर्य यह है कि सारे हथियार इस आत्मा को मारने में असमर्थ हैं। यह आत्मा अविनाशी, अप्रमेय, अजन्मा, नित्य, शाश्वत, अव्यक्त तथा अविकारी है। भगवान् श्रीकृष्ण आपने शिष्य अर्जुन को अपने कर्त्तव्य का बोध कराते हुए विस्तृत उपदेश देते हुए 'आत्मा' का स्वरूप समझाते हैं। यही 'आत्मा' शब्द श्रीमद्भगवद्गीता में अनेक स्थलों पर विभिन्न रूपों में उपलब्ध होता हैं

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥[4] अर्थात् यद्यपि मैं अजन्मा तथा अविनाशी हूँ और यद्यपि मैं समस्त जीवों का स्वामी हूँ, तो भी प्रत्येक युग में मैं अपने आदि दिव्य रूप में प्रकट होता हूँ। यहां 'आत्मा' शब्द स्वयं भगवान् (सगुण-साकार) का वाचक है। भगवान् कहते हैं कि वे अपने ही शरीर में प्रकट होते हैं, सामान्य जीव की भान्ति शरीर-परिवर्तन नहीं करते।

'आत्मा' शब्द छठे अध्याय के 25वें श्लोक में निर्गुण निराकर परमात्मा के हेतु प्रयुक्त हुआ है। जिसमें कहा गया है कि व्यक्ति को धीरे-धीरे क्रमशः विश्वासपूर्वक बुद्धि के द्वारा समाधि में स्थित होना चाहिए और इस

प्रकार मन को आत्मा में ही स्थित करना चाहिए तथा अन्य कुछ भी नहीं सोचना चाहिए। यहां 'आत्मा' का अर्थ परमात्मा है, उसके आनन्द के अतिरिक्त किसी अन्य आनन्द का चिन्तन नहीं करना चाहिए।

यदि हम गीता-ज्ञान रूपी सागर में गहराई तक जाएं तो ज्ञात होता है कि 'आत्मा' शब्द सगुण निराकार परमात्मा के लिए भी आया है। ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना। अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥[5] भगवान् अर्जुन को समझाते हुए कहते है कि कुछ लोग परमात्मा को ध्यान के द्वारा अपने भीतर देखते है, तो दूसरे लोग ज्ञान के अनुशीलन द्वारा और कुछ ऐसे हैं जो निष्काम कर्मयोग द्वारा परमात्मा को देखते हैं। प्रस्तुत श्लोक में 'आत्मानम्' शब्द निराकर परमात्मा के लिए आया है। भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन को बताते हैं कि जहां तक मनुष्य द्वारा आत्मसाक्षात्कार की खोज का प्रश्न है, बद्धजीवों को दो श्रेणियाँ हैं। एक तो जो लोग नास्तिक, अज्ञेयवादी तथा संशयवादी हैं, वे आध्यात्मिक ज्ञान से विहीन हैं, वे आत्मदर्शी भक्त, दार्शनिक जीवन सम्बन्धी सम्बन्धी निष्काम कर्मयोगी कहलाते है।[6] अर्थात् कहने का अभिप्राय यह है कि कुछ लोग जिनकी चेतना शुद्ध होती है वे ध्यान द्वारा परमात्मा को खोजने का प्रयत्न करते हैं तथा कुछ ज्ञान के अनुशीलन द्वारा इन्हें श्रद्धावानों की श्रेणी में गिना जा सकता हैं

गीता के द्वितीय अध्याय का श्लोक है–"प्रजहाति यदा कामान्सर्वान्पार्थ मनोगतान्। आत्मन्येवात्मना तुष्टःस्थितप्रज्ञस्तदोच्यते"॥[7] भगवान् श्रीकृष्ण ने स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति का लक्षण बताते हुए कहा कि हे पृथा-पुत्र अर्जुन जब (मनस्वी) पुरुष मन में स्थित सारी इच्छाओं को छोड़ देता है तब मन से आत्मा में ही सन्तुष्ट हो जाता है, वह स्थित-बुद्धि वाला कहा जाता है। प्रस्तुत श्लोक में आए हुए 'आत्मा' शब्द का अभिप्राय स्वयं (जीवात्मा) से है। इसी प्रकार अन्य थल पर यथा "न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। तत्स्वयं योग संसिद्ध कालेनात्मनि विन्दति॥" (4-38) अर्थात् इस संसार में दिव्यज्ञान के समान कुछ भी उदात्त तथा शुद्ध नहीं है ऐसा ज्ञान समस्त योग का परिपक्व फल है। जो व्यक्ति भक्ति में सिद्ध हो जाता है, वह यथासमय अपने अन्दर इस ज्ञान का आस्वादन करता है। प्रस्तुत श्लोक में 'आत्मनि' शब्द जीवात्माके लिए प्रयुक्त है।

इसी प्रकार "बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्। स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते॥ (5-21) अर्थात् आत्मसाक्षात्कार करने वाला अनासक्त पुरुष भौतिक इन्द्रियसुख की ओर आकृष्ट नहीं होता बल्कि सदैव समाधि में रहकर अपने अन्दर आनन्द का अनुभव करता है। इस प्रकार स्वरूपसिद्ध व्यक्ति परमात्मा में एकाग्रचित होने के कारण असीम सुख भोगता है। प्रस्तुत श्लोक में असक्तात्मा और ब्रह्मयोगयुक्तात्मा 'आत्मा' शब्द से अभिप्राय जीवात्मा से ही है।

भगवान् श्रीकृष्ण ने आत्मसाक्षात्कार को प्राप्त और योग का साधक अर्थात् योगी कौन कहलाता है तथ्य को समझाते हुए कहा है– "ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः। युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः॥ (6-8) अर्थात् वह व्यक्ति जो अपने द्वारा अर्जित ज्ञान तथा अनुभूति से पूर्णतया संतुष्ट रहता है वह व्यक्ति अध्यात्म को प्राप्त जितेन्द्रिय कहलाता है। वह सभी वस्तुओं-चाहे वे कंकड़ हों, पत्थर हों या स्वर्ण-एक समान देखता है। प्रस्तुत श्लोक में भी 'आत्मा' शब्द जीवात्मा के लिए ही आया है।

द्वितीय अध्याय के चौसठवें श्लोक पर अगर ध्यान दें तो उसमें 'आत्मवश्यैः' शब्द आता है। श्लोक का अर्थ है अपने वश में की हुई, राग द्वेष से रहित इन्द्रियों द्वारा विषयों को भोगता हुआ, मन को

कर लेने वाला व्यक्ति अन्त: करण की निर्मलता अथवा शान्ति प्राप्त करता है और वह भगवत्कृपा को भी प्राप्त करता है। यहां 'आत्मवश्यै' पद में 'आत्म' शब्द 'अपने' अर्थात् यह स्वयं मनुष्य का वाचक है। विधेयात्मा पद में आत्मा शब्द 'अन्त: करण' अर्थात् मन के लिए प्रयोग किया गया है। अन्यत्र भी 'आत्मा' शब्द मन तथा इन्द्रियों के लिए भी प्रयुक्त हुआ है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मन की तपस्याएँ बताते हुए भगवान् श्रीकृष्ण कहते है कि—"मन: प्रसाद: सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रह (विनिग्रह:)। भावसुशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते"॥[8] अर्थात् सन्तोष, सरलता, गम्भीरता, आत्मसंयम एवं जीवन की शुद्धि-ये मन की तपस्याएं हैं। भगवान् श्रीकृष्ण ने तपस्या का वर्णन करते हुए यह भी कहा है कि इस वर्तमान युग में हम मन को व्यर्थ ही इधर-उधर लगाए रखते हैं। मन को छल-कपट से रहित होना चाहिए। मौन (गम्भीरता) का अर्थ है—मनुष्य निरन्तर आत्मसाक्षात्कार के विषय में सोचता रहे। उपर्युक्त श्लोक में 'आत्म' विनिग्रह का अर्थ है—'आत्म' अर्थात् मन को नियन्त्रण में रखना। अर्थात् यह स्पष्ट है कि 'आत्मा' शब्द का प्रयोग 'मन' के लिए भी किया गया है।

गीता में आत्मानम्[9] 'आत्मा' शब्द इन्द्रियों का वाचक भी है। अठाहरवें अध्याय में आत्मसाक्षात्कार के योग्य व्यक्ति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जो व्यक्ति अपनी बुद्धि से शुद्ध होकर तथा धैर्यपूर्वक इन्द्रिय मन को वश में करते हुए, इन्द्रियतृप्ति के विषयों का त्यागकर, राग तथा द्वेष से मुक्त होकर एकान्त स्थान में वास करता है, जो थोड़ा खाता है, जो अपने शरीर, मन तथा वाणी को वश में रखता है, जो सदैव समाधि में रहता है तथा पूर्णतया विरक्त, मिथ्या अहंकार, मिथ्या शक्ति, मिथ्या गर्म, काम, क्रोध तथा भौतिक वस्तुओं के संग्रह से मुक्त है, जो मिथ्या-स्वामित्व की भावना से रहित तथा शान्त है, वह निश्चय ही आत्मसाक्षात्कार के पद को प्राप्त होता हैं

आधुनिक युग में मानव जहाँ एक ओर चन्द्रमा पर पहुँच गया है वहीं दूसरी ओर भौतिक वस्तुओं के मोहपाश में फंसकर ज्ञान के रास्ते से पथ-भ्रष्ट हो गया है। आज के मानव की अवस्था उसी तरह अज्ञान युक्त हो गई है। जिस प्रकार धर्मस्वरूप कर्त्तव्य के प्रति उदासीन विषादयुक्त अर्जुन की हो गई थी। लेकिन भगवान् श्री कृष्ण ने गुरू रूप में अर्जुन शिष्य को अपने अरविन्दमुख से निकले एक-एक मोती रूपी शब्द को गीता रूपी ग्रन्थशाला का रूप दिया, और गीता ज्ञान देकर अर्जुन को उचित मसर्ग दिखाया। अत: श्रीमद्भगवद्गीता सर्वग्राह्य एवं श्रेष्ठ ज्ञान से परिपूर्ण ग्रन्थ है। अत: इस ग्रन्थ के ज्ञान की आवश्यकता उसी तरह हर युग में मानव समाज के लिए सदैव रहती है जिस तरह सूर्य की उपादेयता चराचर जगत के लिए शाश्वत रूप से रहती है।

सन्दर्भ:

1. आत्मा ते वात: — ऋग्वेद, 7.87.21
2. द्रष्टव्य — उपनिषदों की भूमि, पृ०74।
3. गीता — अध्याय 2, श्लोक संख्या 23।
4. गीता — अध्याय 4, श्लोक संख्या 6।
5. गीता — अध्याय 13, श्लोक 25।
6. द्रष्टव्य — श्रीमद्भगवद्गीता यथारूप, पृ० 438।
7. गीता — अध्याय 2, श्लोक 55।
8. गीता — अध्याय 17, श्लोक 16।
9. गीता — अध्याय 18, श्लोक 51।

❑❑❑